सिद्ध यात्रा का पहला दशकः 1989–1999

अनुराधा दीदी

सिद्ध मेरा परिवार है। कभी सोचती हूँ कि शुरू कैसे हुआ तो ठीक से बता नहीं पाती। ये सही है कि कुछ घटनाएँ उसके होने में सहायक बनी; जैसे पवन और मेरा मिलना, हम दोनों का विपश्यना करना, मंगल मैत्री साधना से प्रेरित होना, और हम दोनों का गाँव में शिक्षा का काम चुनना, आदि आदि। इस घटना क्रम के बिना शायद सिद्ध संभव न होता। इसका बीज मंगल मैत्री साधना का "सबका मंगल हो" जैसे सरल और शुद्ध भाव से हुआ। यही भाव फैलता गया और सबको जोड़ता चला गया। इसमें पवन या मेरा कोई अतिरिक्त योगदान नहीं रहा। टिहरी गढ़वाल में जौनपुर जनपद की यह भूमि, हमारे सभी साथी, उनके विभिन्न व्यक्तित्व और इन सबके मिलने के अद्‌भुत संयोग ने सिद्ध की रचना की।

कोई योजना बनाकर नहीं आए थे।.... .....जब "कुछ भी" देखने निकलते हैं तो बहुत कुछ मिलता है। ऐसा ही सिद्ध के साथ हुआ। इसे होना था, हुआ। 'होनी' में स्वतः सब सजने लगता है। बिना किसी प्रयास के।

कोई योजना बनाकर नहीं आए थे। जैसे रवीद्र शर्मा जी कहते हैं, जब हम "कुछ खास" देखने निकलते हैं तो निराश होते हैं, लेकिन जब "कुछ भी" देखने निकलते हैं तो बहुत कुछ मिलता है। ऐसा ही सिद्ध के साथ हुआ। इसे होना था, हुआ। 'होनी' में स्वतः सब सजने लगता है। बिना किसी प्रयास के।

तो बात "इत्ती" सी है, लेकिन अपने को "पोथन्ना" लिखने का पुराना अभ्यास है सो क्या किया जाए। मुझे ये सब लिखते हुए भी, एक प्रकार का संकोच हो रहा है। अपनों के साथ कोई आपबीती थोड़े न होती है। जो अपने हैं, उन्हें मालूम है, न जाने कितनी बार सिद्ध यात्रा आपके सामने दोहराई होगी। दोहराने की मेरी पुरानी आदत है। लेकिन ये भी सच है, कि कई बार जब हम पीछे मुड़कर देखतें है तो घटना क्रम के कई नए आयाम दिखाई पड़तें हैं; विश्लेषण से सभी को कुछ न कुछ नया मिलता है।

आज जब याद करने बैठी हूँ तो दिखता है, कि सिद्ध के पहले 10 सालों में बड़ी तेजी से, एक साथ कई महत्वपूर्ण बातें हुईं। सामूहिक बल में बहुत ताकत होती है। युवा साथियों की खुली बहस, काम, चिंतन, गाँव के लोगों के साथ संवाद, महिलाओं के साथ बातचीत, कई गंभीर विचारकों के साथ आदान प्रदान, इस सबने, इतनी समृद्ध और

उपजाऊ भूमि तैयार करी; कि सिद्ध एक स्वतंत्र इकाई के रूप में जीवंत हो कर, फलने फूलने लगा।

जो लोग सिद्ध के साथ शुरू से जुड़े रहे -जैसे पुंडीर जी- उन्हें याद होगा कि गांववालों के आग्रह पर ही सिद्ध ने शिक्षा का काम शुरू किया था। कुछ समय तक हम लोगों ने देहारादून की ओर जानेवाले रास्ते पर, भट्टा ग्राम पंचायत के डोम गाँव मे काम किया। उस समय एक अफवाह फैली थी, कि मसूरी में दो सिरफिरे आए हैं, जिनके पास पैसे हैं (क्योंकि गाड़ी है), और समय बिताने के लिए गाँव में काम करना चाहते हैं। उन्हीं दिनों, सेंजी गाँव के (उस समय के) प्रधान, श्री कुँवर सिंह जी, हमारे घर आए, और आग्रह किया कि हम उनके साथ जौनपुर क्षेत्र के गांवों का भ्रमण करें। ताकि देख पाएँ कि साक्षरता से वंचित कितने सारे गाँव आज भी उनकी ग्राम पंचायत और पूरे जौनपुर जनपद में हैं। उनका कहना बिलकुल सही निकला। उनके साथ एक ही दिन में हमनें जिंसी, नौथा, डाबला, मतेला जैसे छोटे गाँव देखे, जहां कोई स्कूल नहीं था।

उनमें से एक महिला ने आगे बढ़कर मेरा हाथ पकड़ा और कहा कि "जब तक तुम लोग इस गाँव में स्कूल नहीं खोलते, तब तक मैं तुम दोनों को यहाँ से जाने नहीं दूँगी"।

मुझे आज भी याद है जब नौथा गाँव की महिलाओं ने मुझसे पूछा कि क्या मैं पढ़ी लिखी हूँ? मैंने हामी भरी तो उन्होनें पूछा : "पढ़ाई कहाँ की?" मैंने कहा "मसूरी में"। बस, उनमें से एक महिला ने आगे बढ़कर मेरा हाथ पकड़ा और कहा कि "जब तक तुम लोग इस गाँव में स्कूल नहीं खोलते, तब तक मैं तुम दोनों को यहाँ से जाने नहीं दूँगी"। उसने एक लड़के की तरफ इशारा कर कहा, "देखो, वो मेरा बीस साल का लड़का अनपढ़ है। मसूरी में दूध बेचता है। अगर मसूरी से तुम पढ़ी हो, तो तुम्हारा फर्ज बनता है कि हमारे बच्चों को पढ़ाओ। वे भी डीएम और पटवारी बन जाएँ।" जिस आत्मीयता से उसने मेरी आँखों में आँख डाल कर यह कहा, मेरे अंदर कुछ जागा; उसे "आँख की शरम" कहा जाए या शहरी- पढे- लिखे -लोगों का अपराध बोध। पता नहीं। जो भी था, लगा कि वह भाव मुझे चैन से नहीं रहने देगा। कुछ करना होगा।

महिलाओं के साथ संवाद की यह एक शुरुआत थी जो लगभग बीस साल तक चलती रही, जिससे हम सबने बहुत कुछ सीखा, और जिसका लाभ सिद्ध के माध्यम से सभी को मिला।

सबसे पहले, यानि 1989 में, सिद्ध को "महिला समाख्या" से, एक साल के लिए, 10 महिला दल बनाने का काम मिला और "उत्तराखंड सेवा निधि" अल्मोड़ा, ने

कुछ बालवाड़ी शुरू करने को कहा। नया नया उत्साह और गाँव में काम करने का जुनून। 5 सालों में हमारे विभिन्न प्रकार के 30 शिक्षा केंद्र खुल गए थे जैसे प्राथमिक पाठशाला (कक्षा 5 तक); बालवाड़ी; बालशाला (कक्षा 2 तक चलने वाली बालवाड़ी); अनौपचारिक शिक्षा केंद्र; और महिला साक्षरता केंद्र ।

शुरुआत के दिनों में विपश्यना ध्यान, हमारी दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा बन गयी थी। जो भी नया साथी जुड़ता, उससे 10 दिन का एक शिविर करने का अनुरोध किया जाता। बच्चों के ध्यान शिविर हम दोनों लेते थे। स्कूल में सबसे पहले 10 मिनट का आना पान (सांस पर ध्यान देना) होता और अंत में मंगल मैत्री। हमारे कुछ उत्साही शिक्षकों ने कक्षा को अनुशासित करनें में, इस विधि को ले कई सफल उपयोग किए।

बालवाड़ी के बारे में लक्ष्मी आश्रम कौसानी से हमें अच्छा मार्गदर्शन मिला; और साबू और पवित्रा के नेतृत्व में, बालवाड़ी टीम की लड़कियों ने, मिलकर एक बालवाड़ी किट तैयार किया, जिसमें बाल गीतों का कैसेट; सचित्र बाल गीत और कहानियों की किताबें; बालवाड़ी की मैनुअल, बालवाड़ी सहायिका, बालवाड़ी कैलेंडर और 'मैं" नाम की कक्षा 2 तक के बच्चों के लिया एक वर्कबुक होती थी। यह 'किट' सरकारी और गैर सरकारी संगठनों में बहुत लोकप्रिय हुआ, और हमारी टीम ने, जिले तक के (आई.सी.डी.एस.) शिक्षकों व विभागाध्यक्ष के साथ, कई बालवाड़ी प्रशिक्षण किये।

बालवाड़ी के कार्यक्रम के साथ ही महिलाओं के संगठन बने और 1990 से हर साल 8 मार्च को महिला मेला मनाने की परंपरा शुरू हुई।

बालवाड़ी के कार्यक्रम के साथ ही महिलाओं के संगठन बने और 1990 से हर साल 8 मार्च को महिला मेला मनाने की परंपरा शुरू हुई। इस दिन स्थानीय भोजन, लोक कलाओं की प्रदर्शिनी, लोक संगीत, किसी खास हुनर या सामाजिक नेतृत्व करने वाली महिला को पुरुस्कार दिये जाते थे। सारा संयोजन महिलाए करती थीं। स्टेज पर भी अधिकांश महिलाएं ही बैठती थीं। ये दिन इसलिए भी चुना गया क्योंकि इस क्षेत्र में नवंबर से मार्च के पहले हफ्ते तक, महिलाओं को, अपने खेत के काम से फुरसत मिलती थी।

शुरू शुरू में महिलाओं को साक्षर बनाने का काम भी हम इन्हीं 4 महीनों के दौरान करते थे। महिला मेला के दिन साक्षर महिलाओं को पुरुस्कृत किया जाता। लेकिन तीन साल के अंदर समझ में आया कि, चूंकि उनके आम जीवन में साक्षरता प्रासंगिक नहीं थी, इसलिए अभ्यास के अभाव में, वही महिला, 8 महीनों में फिर निरक्षर हो जाती। उनकी साक्षरता का कार्यक्रम दोबारा शुरू करना पड़ता। तीन साल बाद के बाद साक्षरता

का कार्यक्रम हमने बंद कर दिया।

उस समय तक 'साक्षरता' और 'शिक्षा', हमारे लिए पर्यायवाची शब्द थे। इन दो शब्दों का फर्क महिलाओं से सीखा। हालांकि महिलाएं अनेक प्रकार के काम जानती थीं लेकिन सिर्फ साक्षर नहीं थीं। आधुनिक शिक्षा ने साक्षरता का अधिमूल्यन किया है, जब कि साक्षरता मात्र एक हुनर है, जो अभ्यास से कोई भी सीख सकता है। मेरी मित्र पुलमों, ऐसी ही महिला थी, जो साक्षर न होते हुए भी, शिक्षित थी। मेरे और उसके बीच के संवादों ने सिद्ध की शिक्षा यात्रा को एक नया मोड़ दिया। सच्चा संवाद दो लोगों के बीच तभी संभव होता है, जहां बराबरी का रिश्ता हो, जहां निर्भीकता से बात रखी जा सके और जिसमें असहमति के लिए भी पर्याप्त जगह हो। अंततः, समझ एक नितांत व्यक्तिगत स्तर की बातचीत से निकली उस परस्परता से ही बनती है। इसीलिए, मैं मानती हूँ, पुलमों का, सिद्ध यात्रा में बड़ा योगदान है।

पुलमों की बात नयी नहीं थी। वह भी यही कहती थी कि "मैं जो कहती हूँ वह गाँव में हर सयानी औरत कहती है"। लेकिन अगर कुछ नया था, तो वह था, हम सबका, उन बातों को, ध्यान से सुनना। सुनने पर पुलमों का कहना है " मैं अगर गाँव में ये बात करती हूँ और कोई सुनता नहीं, तो वह बात मर जाती है। जब कोई ध्यान से सुनता है तो वही बात जिंदा हो जाती है। तब न ये तेरी बात होती है और न मेरी बात। ये हमारी बात बन जाती है। हमारी बात तभी पूरी होती है जब उसे सुनकर उस पर अमल किया जाए"।

.....कोई सुनता नहीं, तो वह बात मर जाती है। जब कोई ध्यान से सुनता है तो वही बात जिंदा हो जाती है। तब न ये तेरी बात होती है और न मेरी बात। ये हमारी बात बन जाती है। हमारी बात तभी पूरी होती है जब उसे सुनकर उस पर अमल किया जाए"।

सिद्ध में, ऐसी कितनी ही 'हमारी बातें, पूरी' हुईं। महिलाएं और सभी गाँव समाज के अभिभावक गण, सबने मिलकर, गाँव में वर्तमान शिक्षा की प्रासंगिकता पर सवाल उठाकर, आधुनिकता की कड़ी आलोचना करने का साहस किया: सीधे लेकिन पैने प्रश्न जैसे "पढ़ा लिखा "फिट" कहाँ होता है? अगर गाँव का बच्चा शहर में, और शहर का बच्चा विदेश में 'फिट' होता है तो हमारे देश और गाँव का क्या होगा?" इन प्रश्नों ने हमारी मान्यताओं को हिला दिया और हमें सोचने को मजबूर कर दिया। इन प्रश्नों के सहारे ही सिद्ध ने शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के कई प्रयोग किए।

इन बातों को आगे बढ़ाने में सबसे बड़ा योगदान पवन का नेतृत्व और सिद्ध के वरिष्ठ साथियों का रहा। जैसे जैसे उन्हें समझ आया, उन्होने बातों पर गंभीरता से ध्यान

दिया, उनको आधार बनाकर उसकी पड़ताल की, उनको शोध का रूप दिया, उन्हें प्रकाशित करने में मदद की, ताकि व्यापक समाज में वे बहस का मुद्दा बन सके, ये सभी, साधारण काम नहीं। ये वे आवाजें हैं जिन्हें हमने बचपन से अपनी नानी दादी से सुना जरूर है, लेकिन उनपर ध्यान नहीं दिया। उन आवाजों को सम्मानपूर्वक सबके सामने लाने का श्रेय सिद्ध को जाता है। ऐसा करने से हम सबको एक नयी दिशा मिली। लोक ज्ञान को शिक्षा से जोड़ने का एक नया आयाम खुला।

उन्हीं दिनों हमें गुणात्मक शोध के कई तरीके सीखने का अवसर मिला जिसकी मदद से हमने साक्षात्कार और समूह में चर्चा द्वारा लोगों के मुख से निकली बातों का विश्लेषण किया। शिक्षा और साक्षरता का भेद समझा। यह भी समझा कि आधुनिक शिक्षा ने, गाँव में, स्थानीय बोली भाषा, वेश भूषा, और रहन सहन को हीन बना डाला; इस कारण जो अलगाव वाद पैदा किया वह दिखाई देने लगा ; कैसे हाथ का काम 'छोटा काम' माना जाने लगा; कैसे इन तमाम बातों ने गाँव, परिवार और समाज को तोड़ा, यह समझ आया। ये भी साफ दिखा कि समाधान तब ही संभव होगा, जब हम शिक्षा के साथ आत्मविश्वास, आजीविका और सहजता को जोड़ पाएंगे।

आजकल, सभी सोचते हैं कि युवकों/पुरुषों को संवेदनशील बनाने के लिए काम करना चाहिए; सिद्ध में हम लोगों ने, बीस साल पहले, इस मुद्दे पर बड़ी गहराई से सोचा भी और काम भी किया था।

फलस्वरूप, हम लोगों ने जो भी शोध कार्य किये वह, किसी न किसी स्थानीय मुद्दे से जुड़े रहे, और आधुनिक शिक्षा पर लोगों के मतामत का, व्यवस्थित ढंग से सर्वेक्षण किया। परिणाम स्वरूप "ए मैटर ऑफ क्वालिटी" : "चाइल्ड एंड फॅमिली", "मौऊंटन चिल्ड्रेन" जैसे शोध प्रकाशित हुए। सिद्ध में कुछ अध्ययन हुए थे, लेकिन किसी कारणवश प्रकाशित नहीं हो पाये, जैसे: सभी प्रचलित स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों का विश्लेषण; जौनपुर क्षेत्र के सभी त्योहार व जन्म से मृत्यु तक के होने वाले रीति रिवाज का सर्वेक्षण; और इस क्षेत्र के मिथक, लोक गाथा और लोक गीतों का एकत्रीकरण आदि। इस अध्ययन करने की प्रक्रिया में, सिद्ध की टीम ने बहुत कुछ सीखा।

इसी समय हमने, युवाओं को सामाजिक न्याय के मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम गढ़ा, जिसका उदेश्य घर-परिवार में महिलाओं की स्थिति (उनका स्वास्थ्य और सम्मान) को बेहतर बनाना था। इसके तीन भाग थे। पहला: हमारी टीम ने, गाँव जाकर न्याय /अन्याय की प्रचलित विचारधारा, स्थानीय

मुहावरे, लोक गीतो से न्याय की मानसिकता की पड़ताल की। दूसरा: उन्होंने इसके आधार पर महिलाओं के स्वास्थ्य और सामाजिक अन्याय के प्रति युवकों जागरूक बनाने के लिए, 4 दिनों के मॉड्यूल बनाये। तीसरा: उसी टीम ने युवाओं के साथ कार्यशाला करी। इस कार्यक्रम का सकारात्मक प्रभाव, हमारी टीम और स्थानीय समाज के पारिवारिक जीवन पर पड़ा। यह भी हुआ कि सिद्ध संस्था, लड़कियों के लिए एक सुरक्षित स्थान के रूप में माना जाने लगा। समान उद्देश्य होने के बावजूद, यह कार्यक्रम महिला सशक्तिकरण से कुछ अलग प्रकार का था। आजकल, सभी सोचते हैं कि युवको/ पुरुषों को संवेदनशील बनाने के लिए काम करना चाहिए; सिद्ध में हम लोगों ने, बीस साल पहले, इस मुद्दे पर बड़ी गहराई से सोचा भी और काम भी किया था।

जैसे जैसे शिक्षा की समझ बढ़ी, हमने शिक्षा केन्द्रों की संख्या बढ़ाने का काम छोड़, शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने का काम शुरू किया। शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के लिए कई प्रयोग किए । निरपेक्ष और सापेक्ष आत्म विश्वास पर चिंतन किया।

शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने का काम शुरू किया। शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के लिए कई प्रयोग किए। निरपेक्ष और सापेक्ष आत्म विश्वास पर चिंतन किया।

शिक्षा का उद्देश्य, सापेक्ष आत्मविश्वास जगाना है, ऐसा समझ आया। यह दिखाई देने लगा कि पाठ्य पुस्तकें भी कई ऐसी मान्यताएँ बनाती है जिससे हीन भावना बढ़ती है। इस कारण पाठ्य पुस्तकों से ना पढ़ाकर, परिवेश (पेड़ पौधे, खेती, त्योहार आदि) को आधार बना शिक्षण शुरू किया। इससे बहुत लाभ मिले।

सिद्ध पर अवश्य कोई बड़ी कृपा रही होगी कि जहां एक तरफ जौनपुर समुदाय के लोग, आधुनिक शिक्षा पर सवाल उठा रहे थे, वहीं दूसरी तरफ धर्मपाल जी, किशनजी और रिमपोचेजी जैसे विद्वान, अपने ज्ञान से गाँव समुदाय के इस दृष्टिकोण की पुष्टि कर रहे थे। हमें यह भी, अब भली भांति समझ आया कि गांधीजी भी ऐसा क्यों सोचते थे। गुरुजनों के मार्गदर्शन ने हमें देश के औपनिवेशिक इतिहास और उसके चलते, हमारी गुलाम मानसिकता के बारे में, हमें जागरूक किया। देश दुनिया की समझ बनी और सब साथियों को इससे अथाह लाभ मिला। धीरे धीरे सिद्ध ने अपनी अलग पहचान बना ली।

कई बार लोग पूछते हैं, कि क्या कारण था, कि छोटे से क्षेत्र में काम करने के बावजूद, सिद्ध इतना अलग सा दिखाई पड़ता था? इसका कारण सीधी तरह पवन के व्यक्तित्व से जुड़ा है। पवन, बचपन से लोहियाजी की समाजवादी विचारधारा के बीच पले बढ़े और गांधीजी पर अटूट श्रद्धा करते रहे। मुझे याद है कि मसूरी आने के बाद हमारे घर/

सिद्ध में पवन के चाचाजी के मित्र दिनेशदा, रवि राय जी, मधु दंडवते जी, मधु लिमये जी, जॉर्ज फर्नाडींस जी और चंद्रशेखर जी आते थे। जिन बातों को हम साधारणतः सिर्फ पढ़ते थे, वे हमारे घर में और सिद्ध में होती रहती थी। पवन ने युवावस्था से इन मुद्दों पर गहरा मनन किया था और बहुत गहराई से देश और दुनिया के प्रति अपनी जिम्मेदारी को आत्मसात कर लिया था। इसका सीधा प्रभाव सिद्ध के वातावरण पर होना ही था।

हालांकि मेरा बचपन इसके विपरीत एक नौकरीपेशे वाले साधारण घर में बीता, जहां वैचारिक प्रबलता नहीं लेकिन गांधीजी और देश के प्रति अगाध भक्ति भाव था। मेरे पिताजी गांधीजी पर अपार श्रद्धा रखते थे। मीरा बहन से प्रेरित हो, उन्होने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी और मीरा बहन के पशुलोक आश्रम में काम करने लगे। दुर्भाग्यवश सरकारी बाधाओं के कारण पशुलोक आश्रम को बंद होना पड़ा, मीरा बहन निराश होकर विदेश लौट गईं, और मेरे पिताजी भी मन मार कर वापस नौकरी करने लगे। लेकिन, भले ही मेरे पिताजी गांधीजी के आदर्शों को, अपने काम से नहीं जोड़ पाये, लेकिन उन्होने घर पर कई ऐसे नियम लागू किए, जिससे मेरे जीवन में उन आदर्शों की गहरी छाप रह गयी। हमारे घर में हर कपड़ा, (तौलिये से लेकर व्यक्तिगत कपड़ों तक) खादी के होते थे। मैंने स्कूल पास करने के बाद, हमेशा, खादी ही पहनी, और हमेशा अपने सिले हुए कपड़े ही पहनती थी। पिताजी का कड़ा अनुशासन चलता था। गाड़ी होते हुए भी बस में आते जाते, अपना सारा काम खुद करने पर जोर था।

कई बार लोग पूछते हैं, कि क्या कारण था, कि छोटे से क्षेत्र में काम करने के बावजूद, सिद्ध इतना अलग सा दिखाई पड़ता था? इसका कारण सीधी तरह पवन के व्यक्तित्व से जुड़ा है। ....इसका सीधा प्रभाव सिद्ध के वातावरण पर होना ही था।

ऐसा मेरे ही घर में होता था, मैं ऐसा नहीं मानती। शायद, देश की स्वतन्त्रता के ठीक बाद, हर घर में कमोबेश ऐसा ही वातावरण होता होगा। मुझे याद है कि गांधीजी की आदमकद तस्वीर, हमारे ही घर में ही नहीं, उन दिनों अक्सर कई घरों में लगी रहती। जब तक दिल्ली में थे, हर 15 अगस्त को, भारी वर्षा के बावजूद, छाता लगाकर भी, नेहरू जी का भाषण सुनने, हम बच्चों को लाल किला जाना ही होता था। कहीं भी राष्ट्रगीत बजता था तो, कोई कहे न कहे, तत्काल हम बच्चे खड़े हो ही जाते थे। गांधीजी और देश के प्रति गहरी आस्था, पवन और मेरे परस्पर आकर्षण का मुख्य कारण शायद इसीलिए बनी।

मसूरी आने के बाद हमारा परिवार तो सिद्ध तक फैल ही चुका था; इसीलिए

स्वाभाविक था कि वहाँ भी देश की स्थिति पर गंभीर चर्चा होती थी। चाहे वह व्यक्ति हो या विचार पवन को, जो भी, जब भी, देश के हित में कुछ दिखाई देता, वे उसे पूरी तरह अपनाने में साहस ही नहीं, दुस्साहस की सीमा को भी लांघ जाते थे। इतना ही नहीं; वे स्वयं तो जुड़ते ही थे, साथ- साथ हम सब (यानि सिद्ध परिवार और मुझे) भी खींच लेते थे।

पवन, बड़ी आसानी और आत्मीयता से गोयनकाजी, धर्मपालजी, रींपोचेजी, बाबा नागराज, रवीद्र शर्माजी जैसे संत/ विद्वान/ गुरु लोगोंके साथ एक करीबी का रिश्ता बना लेते - इसका पूरा श्रेय पवन को जाता है। ऐसे अद्‌भुत लोगों का, और उनसे मिली साधना और दर्शन का सानिध्य पाकर कोई भी अछूता कैसे रह सकता था? सिद्ध के साथियों के साथ भी ऐसा ही हुआ।

जब हम ऐसे लोगों से मिलते हैं, जो निस्वार्थ भाव से लगातार, एक वृहद समाज को बनाने में लगे हुए हैं तो हमारे अंदर भी कुछ घटता है। ऐसे लोगों की प्राथमिकतायें भिन्न होती हैं, उनके अपने भौतिक जरूरतों से, बहुत बड़ी होती हैं। और जब हमारा आमना सामना होता है तो हमारे अंदर भी कुछ बदलने लगता है। हमारी दुनिया बड़ी होने लगती है। हमें पहली बार अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी निभाने का सुख का एहसास मिलता है। ऐसा ही सिद्ध के साथियों के साथ भी, निश्चित रूप से घटा होगा। साथियों की उम्र कम थी तो उनके अंदर जल्दी बदलाव आए होंगे। सही की ओर, सभी का, बड़ी सरलता से ध्यानकर्षण हो जाता है। हम लोगों का भी हुआ।

शायद इसी कारण से हमारे हर हर कार्य में, समाज, स्थानीयता और देश की मिट्टी से जुड़ा हुआ ज्ञान की झलक, हमेशा दिखाई पड़ती रही। लोक गीत, लोक कथाएँ, मिथक, लोक नृत्य, अपनी समझ और जीवन दर्शन पर आधारित हमारी टीम द्वारा रचित गीत व नाटक और न जाने कितनी रचनात्मक पहल हुई, की गिनती नहीं कर पाती। शायद इसीलिए, दिल्ली के धीरु भाई शेठ जी (सी एस डी एस के जाने माने समाज शास्त्री) ने कहा था कि " मेरे हिसाब से, सिद्ध, एक सामाजिक संस्थान होते हुए भी, सामान्य 'एन जी ओ' नहीं है: सिद्ध एक आंदोलन है।"

अभी तक तो मात्र 10 वर्षों की यात्रा की झलक लिखी है,और मुझे लगता है कि उस समय से भी कितना कुछ छूट गया है। अभी तो मैंने मध्यस्थ दर्शन की बात, बाबा और जीवन विद्या के शिविरों से परिचय की बात, संजीवनी की बात शुरू भी नहीं की - ये सिद्ध के महत्वपूर्ण कार्यक्रम थे -जो 1999 में शुरू हुए। इसके बाद सिद्ध का नया अध्याय शुरू हुआ। ये बातें फिर कभी। लेकिन बाबा के साथ पहली मुलाकात वाली बात शायद मुझे कहनी ही पड़ेगी, ये दिखाने कि बड़े लोगों के सानिध्य मात्र से दृष्टि कैसे बदलती है।

बिजनौर के सम्मेलन की बात है। ठंड थी। अंधेरा हो गया था। बाबा चारपाई में रजाई ओढ़ कर आधे लेटे आधे बैठे थे। पवन और मैं उनके सामने बैठ गए। कमरे में एक मोमबत्ती का मद्धिम सा उजाला था। बाबा का चेहरा साफ दिखाई दे रहा था। उन्होने हम दोनों से अपनी पढ़ाई के बारे में जानना चाहा और पूछा क्या हम उससे संतुष्ट थे? हम दोनों ने उत्तर दिया कि हम अपनी अपनी पढ़ाई से बिलकुल संतुष्ट नहीं थे।

इस परिचय के तुरंत बाद उन्होने एक वाक्य कहा "सत्ता में संपृक्त इकाई"। फिर संपृक्त का अर्थ समझाया: डूबा, भीगा और घिरा । "सत्ता का मतलब क्या है बाबा?" मैंने पूछा। बाबा का उत्तर आज भी याद है। उन्होने अपने एक हाथ के इशारे से अपने और मेरे बीच की खाली जगह की ओर इशारा कर कहा: "ये जो हमारे बीच की दूरी है, ये खाली जगह, इसीको सत्ता कहते हैं। ये हर इकाई के बाहर भी और अंदर भी है। हम इससे घिरे हैं, डूबें हैं और इसमें भीगें हैं, जैसे रुई तेल में भीगी जाती है..."

.....बाबा बोलते जा रहे थे, और मुझे लग रहा था, ईश्वर का दर्शन हुआ, यानि वह जो कण कण में व्याप्त है। जिसकी बात अभी तक सुनी थी, पढ़ी थी, उसकी एक झलक दिखी।

बाबा को जो जानते हैं उन्हें लगेगा ये वाक्य तो बाबा हमेशा कहते हैं। कौन सी नयी बात है? लेकिन यह क्षण मेरे जीवन की महत्वपूर्ण घटना है। बाबा ने हाथ के इशारे से सत्ता की ओर इशारा किया तो मुझे, पल भर के लिए ही सही, मैंने देखा कि वह खाली स्थान, वह शून्य, बहता हुआ उस कमरे की हर चीज को एक साथ जोड़ रहा था, दीवारें, चारपाई, मेज, रजाई, मुझे, पवन को, बाबा को, सब को एक करता हुआ... बाबा बोलते जा रहे थे, और मुझे लग रहा था, ईश्वर का दर्शन हुआ, यानि वह जो कण कण में व्याप्त है। जिसकी बात अभी तक सुनी थी, पढ़ी थी, उसकी एक झलक दिखी।

इसके बाद तो सिद्ध में जीवन विद्या शिविरों का सिलसिला शुरू हुआ। लगातार साल में तीन चार शिविर लगते थे। बाबा मसूरी हमारे घर पर आए, केंप्टी में सिद्ध के कैंपस में रहे। सिद्ध बदला और हम सब भी.

लगता है एक दिन सिद्ध पर पूरी किताब लिखनी ही पड़ेगी ।

अनुराधा दीदी.... मसूरी...२२ अप्रैल २०१७